IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# वीरशैव धर्म दर्शन में पंचाचार

**डॉ0 त्रिलोकीनाथ**
प्रवक्ता
राजकीय इंटर कॉलेज,
बाराबंकी (उ0प्र0)

भारतीय धर्म–दर्शन में वीरशैव धर्म–दर्शन की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वीरशैव धर्म–दर्शन आगमों पर आधारित है।

**सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।**
**निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।** **(सि. शि. 5.14)**

सिद्धान्तशिखामणि की इस उक्ति से यह बात सिद्ध होती है। भगवान् शिव के द्वारा प्रतिपादित कामिक आदि वातुलान्त अट्ठाईस शैवागम सिद्धान्त आगम के नाम से प्रसिद्ध हैं। ''आप्तोक्तिरत्र सिद्धान्तः शिव एवाप्तिमान् यतः'' श्रीकण्ठ सूरि की इस उक्ति से यह पुष्ट हो जाता है। इन अट्ठाईस आगमों में दस आगम भगवान् शिव से और अट्ठारह आगम भगवान् रुद्र से उपदिष्ट माने जाते हैं। इन दस और अट्ठारह आगमों को दक्षिण के अघोरशिव जैसे शिवाचार्य सिद्धान्तागम नाम देते हैं और उनकी द्वैतपरक व्याख्या करते है। रत्नत्रयपरीक्षा में वे कहते हैं– **''सिद्धान्तशब्दः पङ्कजादिशब्दवद् योगारूढ्य शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः''** इसके विपरीत काश्मीरी विद्वान् अभिनवगुप्त अपने महनीय ग्रन्थ तन्त्रालोक में और जयरथ इस विशाल ग्रन्थ की अपनी अतिविशिष्ट विवेक नामक टीका में 10 शिवागमों को द्वैतवादी, 18 रुद्रागमों को द्वैताद्वैतवादी और 64 भैरवागमों को अद्वयवादी बताते हैं। वे अपने इसी ग्रन्थ में कहते हैं कि अद्वयद्वय और द्वयाद्वय शिवागमों के व्याख्याता त्र्यम्बक, आमर्दक और श्रीनाथ नाम आचार्य हुए हैं और इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिए इन्होंने अपनी–अपनी स्वतन्त्र मठिकाएँ स्थापित की हैं। शैवागमों के आधुनिक विद्वान् डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय जी ने भी 10 शिवागमों को द्वैतवादी और 18 रुद्रागमों को द्वैताद्वैतवादी माना है। इन पूरे अट्ठाईस आगमों को मानने वाले वीरशैव आचार्य इनसे द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। पूर्वोक्त अट्ठाईस शैवागमों के उत्तर भाग में वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित है। अतः वीरशैव धर्म–दर्शन का मूल अट्ठाईस आगमों को ही माना जाता है।

## वीरशैव शब्द का अर्थ :–

**वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका।**
**तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः।। (सि.शि. 5.16)**

सिद्धान्तशिखामणि की इस उक्ति में वीरशैव पद का दार्शनिक निर्वचन किया गया है। यहाँ 'वी' शब्द का अर्थ शिव और जीव इन दोनों के अभेद की बोधक विद्या होता है और 'र' शब्द का अर्थ उस विद्या में रमण करने वाला शिवभक्त है। इस प्रकार शिव और जीव का अभेद बोधन कराने वाली विद्या में रमण करने वाले शिवभक्त ही वीरशैव कहलाते हैं।

वीरशैव धर्म में श्रीसद्गुरु दीक्षा के द्वारा इष्टलिंग को प्रदान कर उसको यावज्जीवन शरीर पर धारण करने का आदेश देते हुए कहते हैं –

**प्राणवद्धारणीयं तत्प्राणलिङ्गमिदं तव।**
**कदाचित् कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः।। (सि. शि. 6.26)**

हे शिष्य! तुमको जो इष्टलिंग दिया गया है, इसको तुम अपना प्राणलिंग समझो। जैसे तुम अपने प्राण पर प्रेम रखते हो वैसे ही इस शिवलिंग पर प्रेम रखो और किसी भी परिस्थिति में इसका अपने शरीर से वियोग न होने दो।

जो व्यक्ति गुरु के इस आदेश के अनुसार अत्यन्त सावधानी से व्यवहार करता हुआ कदाचित् प्रमाद से उस इष्टलिंग का शरीर से वियोग होने पर अपने प्राण को भी त्याग कर देने के वीरव्रत का परिपालन करता है, ऐसा वीरव्रत वाला शिवभक्त ही वीरशैव कहलाता है।

**इष्टलिङ्गवियोगे वा व्रतानां वा परिच्युतौ।**
**तृणवत् प्राणसंत्याग इति वीरव्रतं मतम्।**
**भक्तयुत्साहविशेषोऽपि वीरत्वमिति कथ्यते।**
**वीरव्रतसमायोगाद् वीरशैव प्रकीर्तितम्।। (चन्द्र. क्रिया. 10.33–34)**

आगम के इस वचन में उपर्युक्त भाव को ही स्पष्ट किया गया है। **"वीरश्चासौ शैवश्च वीरशैवः"** इस व्युत्पत्ति के द्वारा इन लोगों में शिव के प्रति रहने वाली भक्ति की पराकाष्ठा का प्रतिपादन किया जाता है। यहाँ पर जो वीरत्व कहा गया है, वह शारीरिक बलप्रयुक्त नहीं है, अपितु भक्तयुत्साह प्रयुक्त समझना चाहिये।

वातुलशुद्धाख्य तन्त्र में कहा गया है –

**विशिष्ट ईर्यते यस्माद् वीर इत्यभिधीयते।**
**शिवेन सह सम्बन्धः शैवमित्यादृतं बुधैः।।**
**उभयोः सम्पुटीभावाद् वीरशैवमिति स्मृतम्।**
**शिवायार्पितजीवत्वाद् वीरतन्त्रसमुद्रभवात्।।**
**वीरशैवसमायोगाद् वीरशैवमिति स्मृतम्। (वा.शु.त. 10.27–28)**

इस वचन में ''विशिष्ट ईर्यते इति वीर'' इस तरह वीर शब्द की व्युत्पत्ति को बताकर उस विशिष्ट आचार वाले शैव को वीरशैव कहा गया है।

इस प्रकार उपर्युक्त वीरशैव शब्द के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि अपने सद्गुरु से दीक्षा से प्राप्त इष्टलिंग को जो अपने शरीर से कदापि वियुक्त न करता हुआ सावधानी से उसे अपने शरीर के वक्षस्थल पर धारण करता है, प्रसंग होने पर भगवान् शिव के लिए प्राणत्याग करने के वीरव्रत का परिपालन करता है और विरोध भावना का सर्वथा त्याग कर सब प्राणियों से सदा प्रेम करता हुआ शिव और जीव की अभेदबोधक विद्या में जो निरन्तर रमण करता रहता है, वही वीरशैव है।

अस्तु वीरशैव दर्शन में साधन–मार्ग में प्रवृत्त प्रत्येक साधक के लिए अष्टावरण और पंचाचार मुक्ति–मार्ग के सहकारी साधन माने गये हैं।

**वीरशैव धर्म–दर्शन में पंचाचार :–**

साधक का दूसरा सहकारी साधन पंचाचार है लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, गणाचार और भृत्याचार– इन पाँच प्रकार के आचारों को पंचाचार कहते हैं। यहाँ शास्त्रविहित कर्मों का पालन करना ही आचार है। वैसे तो आचार अनेक होते हैं, किन्तु इन सभी आचारों को पाँच भागों में विभक्त करके वीरशैव धर्म में पंचाचारों का प्रतिपादन किया गया है। ये पाँच प्रकार के आचार साधकों को दुमार्ग से रोककर उनके अन्तःकरण की शुद्धि में कारण बनते हैं। अतः प्रत्येक वीरशैव के लिये अपने जीवन में उनका पालन करना आवश्यक है।

(1) **लिंगाचार –** जीव को लिंगस्वरूप की प्राप्ति के लिये बताये गये आचार को लिंगाचार कहते हैं शरीर, मन तथा भावना से क्रमशः लिंग की पूजा, लिंग का चिन्तन एवं लिंग का निदिध्यासन करना ही लिंगाचार है। वीरशैव धर्म में दीक्षासम्पन्न जीव को अपने इष्ट, प्राण तथा भावलिंग के अतिरिक्त अन्य देवी–देवताओं की अर्चना आदि का निषेध है। यह निषेध उनके प्रति घृणा की भावना से नहीं, किन्तु इष्टलिंग आदि में निष्ठा बढ़ाने के लिये ही है। अतः गुरुदीक्षा से प्राप्त उन लिंगों को अपना आराध्य समझकर उन्हीं की अर्चना आदि में तत्पर रहना लिंगाचार है। (च.ज्ञा. क्रिया. 9.51)

(2) **सदाचार –** जिस आचरण से सज्जन तथा शिवभक्त सन्तुष्ट होते हैं और जिससे अन्तरंग तथा बहिरंग की शुद्धि होती है, उसे सदाचार कहते हैं। इस सदाचार में धर्ममूलक अर्थ संपादन और धन का यथाशक्ति गुरु, लिंग और जंगम के आतिथ्य में विनियोग करना, सदा शिवभक्तों के साथ रहना आदि विशुद्ध आचारों का समावेश किया गया है। (च. ज्ञा. क्रिया. 9.6)

(3) **शिवाचार –** सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह नामक पाँच कृत्यों को करने वाले शिव को ही अपना अनन्य रक्षक मानना शिवाचार है। इस शिवाचार में द्रव्य, क्षेत्र, गृह, भाण्ड, तृण, काष्ठ, वीटिका, पाक, रस, भव, भूत, भाव, मार्ग, काल, वाक् और जन–इन सोलह पदार्थों को शिवशास्त्रोक्त विधि से शुद्ध करके स्वीकार करना ही शिवाचार है (च. ज्ञा. क्रिया 9.32.50)।

(4) **गणाचार –** शिव के प्रथमगणों के द्वारा आचरित आचार को गणाचार कहते है। इस आचार में कायिक, वाचिक तथा मानसिक चौंसठ प्रकार के शीलों का, अर्थात् उत्तम आचरणों का समावेश किया गया है। उनमें प्रमुख हैं– शिव या शिवभक्तों की निन्दा न सुनना, यदि कोई निन्दा करता है तो उसको दण्डित करना, दण्डित करने का सामर्थ्य न रहने पर उस स्थान को त्याग देना, इन्द्रियों से शास्त्रानिषिद्ध विषयों का सेवन न करना, मन निषिद्ध भोग का संकल्प भी न करना, किसी पर क्रोधित न होना, धन आदि का लोभ त्याग देना, सम्पत्ति आने पर भी मदोन्मत्त न होना, शत्रु और अपने पुत्र में विषमता को त्यागकर समता का भाव रखना, निगमागम वाक्यों में श्रद्धा रखना, प्रमाद नहीं करना, अनुपलब्ध वस्तुओं का व्यसन छोड़कर प्राप्त वस्तुओं से ही सन्तुष्ट रहना, पंचाक्षरी मन्त्र का सदा मन में जप करना, विश्व के समस्त प्राणियों को शिव के ही अनन्त रूप समझना आदि शीलों से युक्त आचार ही गणाचार है (च. ज्ञा. क्रिया 9.51–123 एवं सि. शि. 9. 36)।

(5) **भृत्याचार –** शिवभक्त ही इस पृथ्वी में श्रेष्ठ है और मैं उनका भृत्य, अर्थात् दास हूँ, ऐसा समझकर उनके साथ विनम्रता से व्यवहार करना ही भृत्याचार कहलाता है। (च. ज्ञा., क्रिया. 9.9)

भृत्यभाव और वीरभृत्यभाव के भेद से यह भृत्याचार दो प्रकार का है। अपने को गुरु, लिंग तथा जंगम का सेवक समझ कर श्रद्धा से निरन्तर उनकी सेवा में तत्पर रहने की भावना को भृत्यभाव कहते हैं। जिस भाव से युक्त साधक गुरु को तन, अपने इष्टलिंग को मन, तथा जगम को अपना सर्वस्व अत्यन्त आनन्द से समर्पित कर देता है और उसके प्रतिफल पारलौकिक सुख से निस्पृह होकर केवल मोक्ष की अभिलाषा रखता है, उसे वीरभृत्यभाव कहते हैं। इस वीरभृत्यभाव के साधक को वीरभृत्य कहा जाता है। यही भृत्याचार है। उपर्युक्त पाँचो आचार साधक के लिये अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होते हैं। अतः इन पंचाचारों को मोक्ष का सहकारी कारण माना गया है।

इस दर्शन के द्वारा प्रतिपादित साधना–मार्ग में गुरुदीक्षा प्राप्त मानवमात्र अधिकारी है। मानव समाज को सुधारने के उद्देश्य से प्रतिपादित यह सिद्धान्त पूरे मानव समाज के लिये एक श्रेष्ठ वरदान है।

## सहायक–ग्रन्थ–सूची


1. वीरशैवेन्दुशेखरः – पं. सदाशिव शास्त्री 1920
2 वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणि– वीरशैवलिङ्गब्राह्मण ग्रन्थमाला, सोलापुर – 1905
3. सिद्धान्तशिखामणि– तत्त्वप्रदीपकारण्यासहितः भाग 1.2 – वीरशैवलिङ्गब्राह्मण ग्रन्थमाला, सोलापुर – 1905
4. सिद्धान्तशिखोपनिषद्वीरशैवभाष्यम् – काशीनाथग्रन्थमाला, मैसूर – 1930
5. वीरशैवाचारप्रदीपिका – गुरुदेवकविः
6. सिद्धान्तशिखामणि समीक्षा – डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य – शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाणीमठ, वाराणसी – 1989
7. ए हैण्डबुक आफ वीरशैविज्म – एम.सी. नन्दीमठ–मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–1979
8. वीरमाहेश्वराचारसारोद्गारः – लक्ष्मीधराराध्यः – 1300
9. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास, एकादश खण्ड – तन्त्रागम – आचार्य बलदेव उपाध्याय – उ. प्र. संस्कृत संस्थान, लखनऊ – 1997
10. अनादिवीरशैवसारसंग्रह – गूलूरूसिद्धवीरणाचार्य – 1600
11. कारणागमः पञ्चाचार्य – इ. प्रेस, मैसूर – 1956
12. वीरशैवप्रदीपिका – मरितोण्टदार्य – 1660